

# Research maGma

(An International Multidisciplinary Journal)

UGC Approved Journal No: 63465



Editor in Chief

Dr. Sanjay Kumar Singh

Associate Editor

Dr. T. Manichander

# Research maGma

Research maGma is a multidisciplinary research journal, published monthly in all Language. All research papers submitted to the journal will be double - blind peer reviewed .

## Our Editorial Board

Dr Anil Kumar S.

Dr. Gatade Dattatraya Ganapati

Dr. Prashant Thote

Dr. Deepa Viswam

Dr. Anamika Kumari

Smt. B.S.Gunarekha

Dr. P. Samuel

Dr. Pargat Singh Garcha

Dr. M. Abdul Jamal

Dr. Tapas Pal

Dr. Gardi Balu Pandurang

Dr. Dnyaneshwar Babulal Shirode

Dr. Ashokkumar B. Surapur

Dr. N. Sasikumar

Dr. Saykar Satish Govind

Dr. A. Paul Albert

Dr. Atul Hansraj Salunke

Mr. Sanjeev Kumar Mishra

Dr. Neeta Sukhendrapal Singh

Dr. Kispotta Seraphinus

Dr. Santosh Kumar Behera

Dr. Sandhya Ayaskar

Dr. S. Aravind

Dr. Sandeep V. Binorkar

Dr. Raval Sandeep Krishnat

Dr. Mahesh Nawria

Dr. Tamanna Kaushal

Dr. Deepak B. Nale

Dr. Ram Chander

Dr. Sudhir Kumar Jena

Dr. S Maxwell Lyngdoh

Dr. Bhed Pal Gangwar

Dr. Shaikh Fahemeeda

Dr. Deshai Rajesh Bhaurao



# Research maGma

## An International Multidisciplinary Journal

ISSN- 2456-7078

IMPACT FACTOR- 4.520

VOL-1, ISSUE-10, DEC-2017

### साहित्य और सिनेमा

शालिनी सिंह

शोधछात्रा, हिंदी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

सिनेमा 20वीं सदी की सर्वाधिक चमत्कारिक उपलब्धि और वर्तमान में सर्वाधिक लोकप्रिय कला माध्यम है। सिनेमा अर्थात् चलचित्र का अर्थ उस चित्र से है जो पर्दे पर गति के साथ मौजूद हो किसी गतिमान चित्र का मुख्य बिन्दु उसकी गाते ही है। प्रसिद्ध इतिहासकार बी0डी0 गर्ग ने कहा है, “लगभग 25 हजार वर्ष पूर्व सभ्यता के पूर्वार्द्ध में किसी अनजान चित्रकार ने एल्टामिर स्पेन की गुफाओं में बहुत से पैरों वाले सुअर का भित्ति चित्र बनाया था जो शायद मनुष्य का प्रथम प्रयास था जिसमें चित्र को गति के साथ प्रस्तुत गया था।”<sup>1</sup> इन चित्रों को और गतिशीलता प्रदान करने की दिशा में सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रयास फ्रांस के ल्यूमियर बंधुओं को जाता है। यद्यपि सिनेमा की उत्पत्ति पश्चिम के देशों में हुई किंतु भारत को इसके आगमन के लिये अधिक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। 7 जुलाई, 1896 को सायंकाल में मुंबई के वाटसंस होटल में सर्वप्रथम चलती फिरती फिल्मों का प्रदर्शन किया गया। भारत की प्रथम कथाफिल्म ‘राजा हरिश्चंद्र’ का प्रदर्शन 3 मई 1913 की बम्बई के कोरोनेशन सिनेमाघर में हुआ। इस पहली फिल्म की विषयवस्तु, एक साहित्यिक कृति भारतेन्दु हरिश्चंद्र कृत ‘सत्य हरिश्चंद्र’ ही बनी।

सिनेमा और साहित्य का संबंध बहुत ही पुराना है। सिनेमा और साहित्य यूँ कहें तो एक दूसरे के पूरक है। पूरक इसलिये क्योंकि साहित्य, सिनेमा को वह आधार भूमि प्रदान करता है जिसके माध्यम से सिनेमा, साहित्य को जन-जन तक पहुँचाता है। “साहित्य, सिनेमा के सामने एक आदर्श प्रस्तुत कर सकता है। उसमें वास्तविक यथार्थ का असर डाल सकता है तथा उसके उदात्त प्रभावों की संरचना के लिये प्रेरित कर सकता है। किसी भी कथानक के फिल्मीकरण का आयाम इतना विस्तृत होता है कि उसमें केवल उपन्यास, कहानी, नाटक, निबंध और कविता की कथावस्तु ही समाहित हो सकती है, बल्कि इन साहित्यिक विधाओं के कलारूप जैसे भाषा, अलंकार—योजना, बिंब व प्रतीक आदि को भी बड़े प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया जा सकता है। इसी प्रकार फिल्में चंद लोगों की ही अलमारियों में कैद साहित्य की पहुँच को बढ़ा सकती हैं।”<sup>2</sup> साहित्य और सिनेमा के इस आपसी रिश्ते की पहचान साहित्यकारों और फिल्मकारों ने बहुत पहले ही कर ली थी।

“सिनेमा, साहित्य को अपने तकनीकी मिज़ाज में ढालकर क्लास और मास दोनों को दो ढाई घंटे की एक बैठक में ही विस्तृत कहानी प्रस्तुत करने में सफल हुआ है।”<sup>3</sup> सिनेमा को ‘सातवीं कला’ या ‘सेवेन्थ आर्ट’ के रूप में जाना जाता है जो तीन ‘प्रतिनिधि कलाओं’ (Representative Arts) और तीन ‘अभिनय/निष्पादन कलाओं’ (Performing Arts) से बना है। ‘प्रतिनिधि कलाओं’ में रचनाकार स्वयं सामने नहीं आता है, इसमें साहित्य, पेंटिंग और आर्किटेक्चर जैसी कलाएँ आती हैं। रचनाकार की रचना उसका प्रतिनिधित्व करती है जबकि ‘अभिनय/निष्पादन कलाओं’ में कलाकार स्वयं हमारे सामने होता है। इसमें संगीत, नृत्य और नाटक जैसी कलाएँ आती हैं। इस लिहाज से ऑडियो—विजुअल रूप से सिनेमा एक ऐसी कला है— जो Representative भी इसी बिंदु पर सिनेमा का सम्बंध साहित्य से जुड़ता है है और चमत्कृत उपपद भी। सिनेमा की ‘कहानी’ और ‘पटकथा के रूप में साहित्य सिनेमा की आधारभूत इकाई है। सिनेमा सदैव अपनी कथा—पटकथा, संवाद, गीत आदि के लिए साहित्य का ऋणी रहा है डॉ० श्रीराम लागू कहते हैं, “सारी बात कहानी की है, हमारी आज की फिल्मों में कहानी कहाँ है? बिना किसी तालमेल के या तुक के घटनाओं को इकट्ठा कर लिया जाता है।”<sup>4</sup> अब प्रश्न यह उठता है कि किस प्रकार के साहित्य को सिनेमा प्रसन्न करता है? ‘साहित्य’ का अर्थ होता है— ‘स—हित’ अर्थात् जिसमें समाज का हित निहित हो, वह साहित्य है।<sup>5</sup> साहित्य में मानव जीवन की विभिन्न अनुभूतियों को अभिव्यक्ति दी जाती है, साहित्य विचारों का संवाहक होता है। “साहित्य पढ़ते समय हम हम सिर्फ मनोरंजन की उम्मीद नहीं करते पर सिनेमा देखते समय हम मनोरंजन की एक बड़ी उम्मीद रखते हैं। सिनेमा में मनोरंजन को प्राथमिकता है— सिनेमा की पहली माँग है— मनोरंजन।”<sup>6</sup> सिनेमा साहित्य और सिनेमा दोनों के उद्देश्यों को साथ लेकर चलता है और

किसी भी साहित्यिक कृति को लोकप्रिय बना देता है।

भारत की पहली सवाल फिल्म 'आलममआरा' का प्रदर्शन 14 मार्च 1931 को बम्बई के 'मैजिस्टिक सिनेमा' में हुआ था इसके निर्माता-निर्देशक इंपीरियल कंपनी के मालिक आर्देशिर ईरानी थे। यह फिल्म एक फंतासी कथा पर आधारित थी जिसे हूबहू पारसी थियेटर की भौली में प्रस्तुत किया गया था। "यह जोसेफ डेविड के एक पारसी नाटक पर आधारित थी।" "1932 में हिंदी सिनेमा के आधार स्तंभ वी० शांताराम का पर्दापण हुआ। यद्यपि वे मूक युग से ही जुड़े थे। कलामहर्षि बाबूराव पेंटर की अद्वितीय मूक फिल्म 'साबकारी पाश' में उन्होंने नायक की भूमिका की थी।" साहित्य को सिनेमा के निकट लाने का प्रथम प्रयास वी० शांताराम ने किया। "हरिनारायण आटे के उपन्यास 'भाग्यश्री' पर आधारित 1934 में प्रदर्शित हुई फिल्म अमृतमंथन ने वी० शांताराम की प्रतिभा को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकृति दिलाई। धीरे-धीरे फिल्म बनाने वालों ने विषयों के चयन में गंभीरता दिखाई और लेखकों और उनकी कृतियों की ओर ध्यान देना शुरू किया। हिंदी के सर्वाधिक लोकप्रिय साहित्यकार प्रेमचंद को अजंता मूवीटोन कंपनी ने 1933 में मुम्बई आने का न्योता दिया। सवाक् फिल्में अभी भौशवावस्था में ही थी कि प्रेमचंद की कहानी पर मोहन भवनानी के निर्देशन में 'मिल मजदूर' बनी। निर्देशक ने मूल कहानी में कुछ बदलाव किये और फिर उस पर सेंसर बोर्ड की कैची चली, इसके बाद फिल्म का जो स्वरूप सामने आया उससे प्रेमचंद संतुष्ट नहीं थे और लेखक की हत्या की बात करते हैं। प्रेमचंद 'फिल्म और साहित्य' लेख में लिखते हैं कि, "लोगों की धारणा है कि सिनेमा जब से सवाक् हो गया है, साहित्य का अंत हो गया है। साहित्य भावों को जगाता है लेकिन प्रश्न यह है कि कैसे भावों को? साहित्य वह है जो ऊँचे और पवित्र भावों को जगाये और सुन्दरतम को सामने लाये.....। हमारा ख्याल है कि यह बात सिनेमा में नहीं मिलती।" साहित्य और सिनेमा की सर्वाधिक उत्कृष्ट प्रस्तुति 1935 में न्यू थियेटर्स व प्रमथेश चंद बरुआ निर्देशित 'देवदास' के रूप में हुई। "शरतचंद्र के कालजयी उपन्यास पर आधारित यह फिल्म साहित्य और सिनेमा की युति का हिंदी सिनेमा में पहला प्रतिमान बनी।" "देवदास" हिंदी ही नहीं अपितु तमिल सहित सात भाषाओं में फिल्मांकित की जा चुकी है। हिन्दी में ही देवदास को तीन बार फिल्मांकित किया जा चुका है जिसे क्रमशः प्रमथेश चंद बरुआ, बिमलराय और संजय लीला भंसाली जैसे सर्वश्रेष्ठ निर्देशकों ने निर्देशित किया है।

हिंदी सिनेमा के आरंभ से ही प्रमथेश चंद्र बरुआ, देवकी बोस, बोस, नितिन बोस, शांताराम जैसे निर्देशकों ने साहित्य को सिनेमा की दृष्टि प्रदान करने की कोशिश की थी और उनकी इस कोशिश को महबूब खान की 'रोटी', और 'अमर', वी० शांताराम की 'डॉ० कोटनीस की अमर कहानी', 'पड़ोसी और आदमी', बिमलराय की 'दो बीघा जमीन', 'बाप-बेटी', गुरुदत्त की 'प्यासा' और 'कागज के फूल' आदि फिल्मों के माध्यम से जोकि प्रत्यक्षतः किसी साहित्यिक कृति पर आधारित नहीं थी, हिन्दी सिनेमा को गौरवान्वित करने का कार्य किया। हिन्दी के आरंभिक सिनेमा से लेकर आज तक अनेक फिल्मकारों ने साहित्य की प्रतिष्ठित कृतियों पर फिल्मों का निर्माण किया है जिनमें भोक्सपियर, टॉल्सटाय, कालिदास, भद्रक से लेकर भारतेन्दु हरि चंद्र, रविन्द्रनाथ टैगोर, भारतचंद्र चट्टोपाध्याय, मोहन राकेश, प्रेमचंद, चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी', जैनेन्द्र, अमृतलाल नागर, भगवतीचरण वर्मा, फणी वरनाथ रेणु, कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, मन्नु भण्डारी आदि लेखकों की कृतियाँ सम्मिलित हैं। प्रेमचंद की कृतियों पर ही 1934 में 'नवजीवन' और 'सेवासदन' बनी लेकिन दोनों फिल्में 'फलाप रही। यही हाल 1946 में प्रेमचंद के उपन्यास 'रंगभूमि' पर इसी नाम से बनी फिल्म का भी रहा। 1941 में भगवतीचरण वर्मा के उपन्यास 'चित्रलेखा' पर कंदार शर्मा ने इसी नाम से फिल्म बनाई जो कि सफल रही जो कि उस समय एक अपवाद था। फिर भी, फिल्मकार साहित्यिक कृतियों पर फिल्म बनाने को लेकर उत्साहित नहीं हुए और जिन लोगों ने इक्का-दुक्का कोशिश भी की उन्हें असफलता का सामना करना पड़ा। अमृतलाल नागर, उपेन्द्रनाथ अ क, भगवतीचरण वर्मा जैसे लेखक हिंदी सिनेमा में खप नहीं सके और वापस लौट आये। "दुर्भाग्य पूर्ण स्थिति यह भी रही कि अनिवार्यता के बावजूद साहित्य और सिनेमा के संबंध मधुर नहीं रहे।" 11

1960 में चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' की कहानी 'उसने कहा था,' आचार्य चतुरसेन भास्त्री के उपन्यास पर 'धर्मपुत्र' नाम से, रेणु की कहानी 'तीसरी कसम उर्फ मारे गये गुलफाम' पर फिल्में बनी और तीनों फिल्में बुरी तरह फ्लॉप रही। 'तीसरी कसम' को भले ही उसकी श्रेष्ठता के लिये राष्ट्रीय पुरस्कार मिला हो लेकिन फिल्म फ्लॉप होने से निर्माता-गीतकार 'शैलेन्द्र' इस दुनिया को ही छोड़ चले क्योंकि यह फिल्म उनका सपना थी। प्रेमचंद की मृत्यु के काफी समय बाद उनकी तीन कहानियों पर फिल्में बनी परंतु जिसको प्रसिद्धि मिली, वह थी सत्यजीत राय द्वारा बनाई गई 'शतरंज के खिलाड़ी।' अब प्रश्न उठता है कि क्या सत्यजीत राय ने मूल कृति को ज्यो का त्यों ही सिनेमा के कलेवर में ढाल दिया जिस कारण यह फिल्म इतनी सफल हुई। इस फिल्म को तीन फिल्मफेयर पुरस्कार मिले थे जिसमें सर्वश्रेष्ठ निर्देशक का पुरस्कार भी सम्मिलित था। "दरअसल जिसप्रकार एक श्रेष्ठ लेखक ही उच्चकोटि की रचना का सृजन कर सकता है, उसी प्रकार उच्चकोटि की फिल्म का निर्माण भी एक समर्थ फिल्मकार के द्वारा ही संभव है।" 12 1959 में कृष्ण चोपड़ा कृत 'हीरा मोती,' 1977 में मृणाल सेन द्वारा 'ओका उरी कथा' जो कि 'कफन' पर आधारित थी तथा सत्यजीत राय द्वारा 1981में निर्मित 'सद्गति' ने भी अवश्य प्रेमचंद की कृति के साथ-न्याय किया, इसका कारक मात्र यही है कि कृति का फिल्मांकन समर्थ निर्देशकों द्वारा हुआ था।

हिन्दी की साहित्यिक कृतियों पर सफल फिल्म न बन पाने के कई कारक हैं। साहित्य लेखन एक अलग विधा है और नितांत व्यक्तिगत कार्य है। साहित्यकार अपने लेखन में स्वतंत्र होता है, वह चाहे जैसे अपने पात्रों, घटनाओं आदि को अपने अनुसार क्रियान्वित करता है या दूसरे शब्दों में कहें तो साहित्यकार अपने क्षेत्र का बादशाह होता है और उसकी यही बादशाहत, जब सिनेमा के क्षेत्र में आकर समाप्त होती जाती है तो वह बर्दाश्त नहीं कर पाता। साहित्य चूँकि भावपरक है और सिनेमा मनोरंजनपरक, अतः निर्देशक अपनी आवश्यकतानुसार साहित्यिक कृतियों में काँट-छाँट करके ही फिल्म बनाता है, फिल्मकार और साहित्यकार की संवेदना में तालमेल नहीं हो पाता और दोनों आपस में समन्वय नहीं कर पाते जिससे लेखक निराश होकर वापस लौट आता है। रामवृक्ष बेनीपुरी के अनुसार- "प्रेमचंद जी की कृतियाँ सिनेमा में आकर भ्रष्ट हुईं। सुदर्शन जी की साहित्यिक प्रतिभा को सिनेमा खा गयी। भगवतीचरण वर्मा, भगवती प्रसाद वाजपेयी उग्र, अशक कौन-कौन न आए और इस पहाड़ से सर टकराकर लहलुहान घर लौटे।" 13

हिंदी लेखक भी इस बात से सहमत हैं कि वे भी सिनेमा के साथ समन्वय स्थापित नहीं कर सके। हिंदी के अधिकांश प्रतिष्ठित लेखकों के हाथ निराशा ही लगी। राही मासूम रजा और कमले वर ही ऐसे लेखक हैं जिन्होंने हिंदी सिनेमा की दलदली भूमि में अपने पाँव

लंबे समय तक टिकाए रखने में सफलता पायी, इन्होंने सिनेमा को साहित्य की नजर से न देखकर एक स्वतंत्र विधा के रूप में देखा और सिनेमा और साहित्य के बीच समन्वय स्थापित करने का सार्थक प्रयास किया। साहित्य लेखन और सिनेमा लेखन दो अलग-अलग प्रक्रियाएँ हैं, साहित्य लेखन जहाँ नितांत व्यक्तिगत कर्म है, वहीं सिनेमा लेखन सामूहिक सृजन का प्रतिफलन, लेखक, सिनेमा के क्षेत्र में आकर निर्देशक के हाथों की कठपुतली मात्र बनकर रह जाता है। लेखक जहाँ अपने कृतित्व में शब्दों को अपने अंगुलियों पर नचाता है और जब निर्देशक के अनुसार उसे कार्य करना पड़ता है तो वह इसे कतई बर्दाश्त नहीं कर पाता। साहित्य में जहाँ भावों का वर्चस्व रहता है वहीं सिनेमा में भावों के साथ-साथ दृश्यात्मक और ध्वन्यात्मक प्रभावों के महत्त्व को भी स्वीकार किया जाता है। सत्यजीत राय के अनुसार, “फिल्म छवि है, फिल्म शब्द है, यह फिल्म गति है, फिल्म नाटक है, फिल्म कहानी है, फिल्म संगीत है। फिल्म में मुश्किल से एक मिनट का टुकड़ा भी इन सब बातों को एक साथ दिखा सकता है।”<sup>14</sup> यह साहित्य और सिनेमा का दुर्भाग्य ही रहा है कि दोनों के आपसी संबंध मधुर और कटु दोनों ही रहे हैं। जिन भी लेखकों ने सिनेमा की तरफ रुख किया वे अततः निराश होकर ही लौट गये या समझौता वादी बनकर भी प्रसिद्ध हुये। “रचनाकार अपने रचना संसार का अकेला बादशाह होता है लेकिन फिल्म के जंगल में उसका मुकाबला कई शेरों से हुआ। एक शेर फिल्म-निर्माता था, दूसरा शेर निर्देशक था तथा बाद में अभिनेता के रूप में तीसरा भोर भी तैयार हुआ। फिल्म के जंगल में इतना घालमेल हो गया कि दावे के साथ यह कहना मुश्किल हो गया कि आखिर फिल्म किसकी विधा है, निर्माता की लेखक की, निर्देशक की अथवा अभिनेता-अभिनेत्री की। आज की फिल्म कम से कम लेखक की विधा तो नहीं है।”<sup>15</sup>

साहित्यिक कृतियों पर बनी फिल्मों की एक लम्बी श्रृंखला है जिनकी मूल संवेदना, कृति की आत्मा कहीं विलीन होती दिखाई देती है। फिल्म के रूप में साहित्य की संवेदना या तो खो जाती है या सतही हो जाती है। किसी कृति का पाठक जब उस पर बनी फिल्म देखने जाता है तो वह संतुष्ट नहीं हो पाता क्योंकि फिल्मों पर व्यावसायिकता इस कदर हावी हो जाती है कि कृति का मूल स्वरूप ही विलुप्त हो जाता है। “इसका मूल कारण यही है कि जो लेखक है, वह निर्माता और निर्देशक नहीं बन सकता और निर्माता है, निर्देशक है, वे लेखक बनने के भ्रम में होते हैं। निर्माता अपना आर्थिक लाभ अधिक देखता है और जो निर्देशक है उसकी सफलता फिल्मों के बॉक्स ऑफिस पर हिट होने पर ही होती है।”<sup>16</sup>

“दर्शक की पंसद, फिल्म की लोकप्रियता तथा आर्थिक लाभ के इस चक्रव्यूह में लेखक की नियति फँसे हुये ‘अभिमन्यु’ की तरह होती है। या तो उसे आत्मसमर्पण करना पड़ता है या फिर उसकी मृत्यु निश्चित है। लेकिन फिल्म विधा के संस्कार के लिये यह भी अनिवार्य है कि साहित्य की उसमें दखलंदाजी हो। ऐसा कैसे हो सकता है, इस पर पूरी ईमानदारी से चर्चा होनी चाहिए। फिल्म और साहित्य दोनों रचनात्मक प्रतिभा की माँग करते हैं। अंतर सिर्फ इतना है कि साहित्य सृजन है और फिल्म उसका पुनर्सृजन।”<sup>17</sup>

सत्यजीत राय ने फिल्मों के इस अर्थशास्त्र का ध्यान रखते हुये बंगला कथाकारों की रचनाओं पर अनेक फिल्में बनाई और वे फिल्मों सफल भी रही हैं। ऐसा इसलिए क्योंकि वे एक संवेदनशील रचनाकार हैं और वे अपने पात्रों और दर्शकों की सांस्कृतिक जीवन और दृष्टि को उनके मूल संवेदना से भटकने नहीं देते। वे कहते हैं, “जब मैं किसी लेखक की कहानी चुनता हूँ तो इसलिए कि उस कहानी के कुछ हिस्से मुझे अच्छे लगे हैं। यही कहानी के कुछ हिस्से मुझे अच्छे लगे हैं। यही भाग फिल्म में उभरकर आते हैं।”<sup>18</sup>

साहित्यकार दुनिया के किसी भी कोने में बैठकर लिख तो सकता है परन्तु सिनेमा के द्वारा ही उसकी यह रचना समाज के हर तबके अमीर, गरीब, शिक्षित, अशिक्षित, शहर, गाँव तक पहुँच पाती है। साहित्य रूपी मजबूत, आधार स्तंभ पर ही सिनेमा का भव्य प्रासाद टिका है और निरंतर उसकी भव्यता में चार चाँद ही लग रहे हैं। दूसरी ओर साहित्य को जन-जन तक अपनी पकड़ बनानी थी जो कि सिनेमा के द्वारा ही संभव है। “साहित्य सिनेमा के जरिए अलमारियों से निकलकर आम आदमी की पहुँच तक जा पहुँचा। जो कृति घंटों बैठकर कई दिनों में पढ़ी जाती थी, सिनेमा ने उसे नृत्य, संगीत और गीत से भरकर, सुंदर वातावरण द्वारा मोहक और रोचक बना तीन घंटों में रंगीन पर्दे पर उतारकर एक मिसाल कायम की।”<sup>19</sup>

सिनेमा, साहित्य के बिना पंगु था क्योंकि उसमें कहानी का अभाव था, साहित्य ने उसे पाँव दिये तो सिनेमा ने साहित्य और साहित्यकार को जो युग प्रवर्तन, समाजसुधार का स्वप्न देख रहा था, जन-जन तक पहुँचाकर लोकप्रिय बनाया। दोनों एक-दूसरे की अँगुली थामकर निरंतर अपनी मंजिल तक चलते गये और लक्ष्य को पाने में सफल रहे।

अतः स्पष्ट है कि सिनेमा और साहित्य का संबंध अति प्राचीन है, जहाँ साहित्य हमारी वर्षों की परंपराओं की थाती है तो सिनेमा वैज्ञानिक युग की नयी देन है। सिनेमा आधुनिक तकनीक से व्यक्ति को कैमरे की इशारे पर नचाता है तो साहित्य ने उसे नाचने के लिये अपनी जमीन दी। पुरातन व आधुनिक कला का मिश्रण है— सिनेमा। दोनों का उद्देश्य ‘बहुजन हिताय’ ही रहा है और दोनों ने अपनी इस जिम्मेदारी को बखूबी निभाया भी है और समाज और देश के विकास में अपना योगदान दिया।

“माना कि साहित्य स्वतंत्र है और उसे किसी बंधन में बाँधा नहीं जा सकता है, परन्तु ‘बन्धन में मुक्ति और ‘मुक्ति में बंधन है’ क्योंकि बंधन के बिना आजादी को और आजादी के बिना बंधन की अवधारणा अधूरी है। सिनेमा में ढलकर साहित्य अपनी सार्थकता पाता है और अपने आपको साहित्य द्वारा सजा सँवारकर सिनेमा अपनी क्षमता, सार्थकता, संपन्नता को प्राप्त होता है।”<sup>20</sup> धर्म, राजनीति, भाषिक सीमाओं से रहित होकर साहित्य और सिनेमा को अपने सामाजिक उत्तरदायित्व को लक्ष्य पूर्ति हेतु निरंतर प्रयासरत् रहना चाहिये और अपने आपसी कटुता को विस्मृत करके सृजन के नवीन आयाम गढ़ने चाहिये।

### सन्दर्भ ग्रन्थ :

1. फिल्मफेयर, मार्च 8, 1963, पृ0 15
2. सिनेमा और समाज, विजय अग्रवाल
3. सिनेमा और साहित्य का अंतःसंबंध, डॉ0 चंद्रकांत मिसाल पृ0 29
4. डॉ0 श्रीराम लागू, सिनेमा और समाज, विजय अग्रवाल, पृ0 60

5. सिनेमा और साहित्य का अंतःसंबंध, डॉ० चंद्रकांत मिसाल, पृ० 28
6. हंस, फरवरी 2013, सपा० राजेन्द्र यादव, पृ० 118
7. कथाकार कमले वर और हिंदी सिनेमा, उज्ज्वल अग्रवाल, पृ० 22
8. वही, पृ० 23
9. वही, पृ० 26
10. वही, पृ० 26
11. सिनेमा की संवेदना, विजय अग्रवाल, प. 35
12. कथाकार कमले वर और हिंदी सिनेमा, उज्ज्वल अग्रवाल, पृ० 30
13. सिनेमा की उपेक्षा नहीं कर सकते, रामवृक्ष बेनीपुरी, सिनेमा के सौ बरस, संपा० मृत्युञ्जय, पृ० 7, शिल्पायन प्रकाशन 2002
14. मेरा जीवन और मेरी फिल्में, सत्यजीत राय, पृ० 7
15. सिनेमा और समाज, विजय अग्रवाल, पृ. 73
16. सिनेमा व साहित्य का अंतःसंबंध, डॉ० चंद्रकांत मिसाल, पृ० 40
17. सिनेमा व समाज, विजय अग्रवाल, पृ० 78
18. अमृत संदे I, 2 अगस्त 1997
19. सिनेमा व साहित्य का अंतःसंबंध, डॉ० चंद्रकांत मिसाल, पृ० 45
20. वही, पृ० 30